2

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

सहजानन्द शास्त्रमाला

वस्तु-विज्ञान-तन्त्र

रचयिता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

सम्पादक—
सुमेरचंद जैन,
१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

प्रकाशक—
दि० जैन समाज मण्डी वामोरा (मध्य प्रदेश)
कृते श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

प्रति २२००
सन् १९७७

निष्पक्ष तत्त्वज्ञानके रुचिवंतों
को सादर भेंट

लागत
३० पैसे

सम्पादकीय

प्रिय पाठकवृन्द ! हम आप सब लोगोंकी एक ही अभिलाषा रहती है कि क्लेशोंसे छुटकारा हो और शान्तिका अनुभव हो। इसके लिये लोग जीवनमें नाना संग्रह विग्रहके यत्न किया करते हैं, किन्तु क्लेश बाहरसे नहीं आते, स्वयंमें कल्पना विकार बननेसे आते हैं तथा शान्ति तो स्वयंका स्वभाव ही है जब तक यह तथ्य स्पष्ट न हो जाय तब तक क्लेशसे छुटकारा पानेका व शान्ति अनुभव करनेका उपाय नहीं बन सकता। एतदर्थ वस्तुस्वरूपका, वस्तुमें विकार आनेकी विधिका, वस्तुसे विकार हटनेकी विधिका परिचय अत्यावश्यक है। यह समस्त तत्त्वज्ञान आध्यात्मिक व सैद्धान्तिक शास्त्रोंके अध्ययन मननसे प्राप्त होता है। उन सत् शास्त्रोंका निर्दोष अध्ययन हो, समीचीन पद्धतिसे अध्ययन हो, निःशंक अध्ययन हो, विभ्रमरहित अध्ययन हो, एतदर्थ अध्यात्मयोगी ज्ञानमूर्ति न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराजने सत्य जिज्ञासु भव्यात्माओंपर करुणा करके "**वस्तुविज्ञानतन्त्र**" रचा है, जिसमें सिलसिलेवार १०१ सिद्धान्त नियम लिखे गये हैं। इन सिद्धान्त नियमोंसे मिलान कर अपनी जानकारीको प्रमाणित करके निःशङ्क अध्यात्म अन्तस्तत्त्वकी उपलब्धिका पौरुष करना सुगम हो जाता है।

आशा है कि जिज्ञासु जन सहजानन्दसाहित्यका अध्ययन करके निर्बाध शान्तिमार्गमें प्रगति करेंगे।

१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर — सुमेरचन्द जैन

वस्तु-विज्ञान-तन्त्र

रचयिता— अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य
पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

मंगलाचरण

शान्तिः शान्तात्मबोधात् स च सहजनिजात्मावबोधेन सद्यः,
तस्योपायस्य बोधे इह भवति विवादः स्वलाभेन हीनः ।
यायात् विश्वः स्वतन्त्रं सहजनिजपदं निर्विवादप्रबोधात्,
तस्माद् वक्ष्ये प्रबोधं सुगमनियमकं वस्तुविज्ञानतन्त्रम् ॥१॥

१—प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र सत् है, अतः प्रत्येक द्रव्य अपने ही सत्त्वविलाससे सतत उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है ।

२– प्रत्येक द्रव्य अपने अखण्ड स्वभावमय है और वह स्वभाव अन्य जातिके द्रव्योंसे विलक्षण है ।

३– सजातीय द्रव्योंमें स्वभावकी समानता होनेपर भी सजातीय द्रव्योंमें भी प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप है ।

४—द्रव्यके अखण्ड स्वभावका परिचय पानेके लिये व्यवहारनयसे स्वभावका शक्तियोंके रूपसे भेद करके समझाया जाता है ।

५– द्रव्यके अखण्ड स्वरूपको व्यवहारनयसे भेद करके

समझाया न जाये तो तीर्थप्रवृत्तिका लोप हो जायगा, जिससे फिर समाज मोक्षमार्गमें पौरुष करनेका अपात्र रह जायेगा।

६– द्रव्यमें प्रतिसमय परिणमन होना अनिवार्य है, अन्यथा द्रव्य सत् ही न हो सकेगा, किन्तु ऐसा त्रिकाल भी संभव नहीं कि द्रव्य असत् हो या परिणमनशून्य हो।

७– प्रत्येक द्रव्यका प्रतिसमयका परिणमन उसी समयमें ही है और वह एक अखण्ड परिणमन है।

८—द्रव्यमें प्रतिसमय होते रहने वाले अखण्ड परिणमन का परिचय पानेके लिये व्यवहारनयसे अखंड परिणमनको व्यवहृत शक्तियोंके परिणमनरूपसे भेद करके समझाया जाता है।

९– अखण्ड पदार्थके अखण्ड परिणमनको व्यवहारनयसे भेद करके समझाया न जाये, तो तीर्थप्रवृत्तिका लोप हो जायगा जिससे फिर समाज वस्तुस्वरूपको समझनेका मार्ग न पा सकेगा।

१०– प्रत्येक द्रव्य प्रदेशात्मक है, चाहे कोई द्रव्य एकप्रदेशी हो या अनन्तप्रदेशी हो, क्योंकि जो सत् है वह अपना आकार तो रखता ही है।

११—प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य (गुणपर्यायपिण्ड), क्षेत्र (प्रदेश), काल (परिणमन) व भाव (स्वभाव या शक्ति) से है, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं है।

१२– प्रत्येक द्रव्यमें निरन्तर परिणमनेका स्वभाव है,

जिसके कारण परसे असंपृक्त द्रव्य अपने सहजस्वभावके अनुरूप सहज परिणमन करता रहता है।

१३– स्वभावके अनुरूप सहज शुद्ध परिणमनेका स्वभाव होनेपर भी जिन द्रव्योंमें वैभाविकी शक्ति है और परसे संपृक्त हैं वे द्रव्य उपाधिका निमित्तसान्निध्य पाकर अपनी-अपनी ही परिणतिकलासे खुद ही विकाररूप परिणम जाया करते हैं।

१४– अशुद्ध उपादान निमित्तसान्निध्य पाकर खुद अपने प्रभाव वाला होता है।

१५– उपादानका विकृत परिणमन व प्रभाव निमित्तसे नहीं आता, फिर भी निमित्तसान्निध्यमें ही उपादान अपनेमें विकारपरिणमन कर सकता है, यही निमित्तनैमित्तिक योग कहलाता है।

१६—निमित्तसान्निध्य पाकर उपादानमें विकार परिणमन होता है, इसी कारण वह विकारभाव कहलाता है।

१७– विभाव परभाव है, इसका अर्थ यह नहीं कि उपादानका विभाव किसी परपदार्थका परिणमन है, किन्तु अर्थ यह है कि विकार उपादानभूत पदार्थकी स्वाभाविकी दशा नहीं है, वह परनिमित्त पाकर उपादानमें हुई है।

१८—परका निमित्त पाकर स्वमें होने वाले भावको, परस्वभाव व विभाव कहते हैं।

१९– विभावसे उपेक्षा करके स्वभावमें उपयुक्त होनेमें कल्याण है।

२०—विभाव परभाव है, मेरा स्वभाव भाव नहीं है, ऐसा जान लेनेपर विभावसे उपेक्षा हो जाती है।

२१—निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय विभावसे उपेक्षा कराके स्वभावदृष्टि सुगम स्पष्ट करानेके लिये है। निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयमें परवर्तृत्वकी गंध भी नहीं, यह परिचय एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें वर्तृत्वप्रतिषेधक है।

२२—वस्तुस्वातन्त्र्यका परिचय वस्तुके सहजस्वभावके परिचयका प्रयोजक है।

२३— वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिक योग इन दोनों का एकत्र रहना विरुद्ध नहीं है।

२४—आत्मस्वभावका परिचय आत्मस्वभावमें उपयुक्त करानेका (आत्मस्वभावमें लगानेका) प्रयोजक है।

२५— जीवके नाना भव अवगाहना आदिका वर्णन यह स्मरण करानेका प्रयोजक है कि आत्मज्ञान बिना जीवकी ऐसी ऐसी दुर्दशायें हुआ करती हैं।

२६— जीवकी द्रव्यभाव दुर्दशाका निमित्त कारण कर्म-विपाक है।

२७— कर्मविपाकके प्रस्फुटनको नौबत आनेका कारण उस प्रकारका अनुभाग वाला कर्मबन्धन है।

२८— कर्मबन्धन कर्मास्रवणपूर्वक होता है, कर्मास्रवण का अर्थात् कार्माणवर्गणामें कर्मत्व आनेका साक्षात् निमित्त

कारण उदयागत द्रव्यप्रत्यय (कर्म) है।

२९- उदयागत द्रव्यप्रत्ययमें नवीन कर्मास्रवणका निमित्तपना आ जाय इसका निमित्त कारण जीवका उस समयका रागद्वेष मोहभाव है।

३०—जीवकी दुर्दशाका मूल कारण निरखनेपर ज्ञात होता है कि जीवको अपनी दुर्दशा अपने अपराधसे अर्थात् राग द्वेष मोह भावसे हुई है।

३१—रागद्वेष मोह भाव जीवका मलीमस ज्ञान विकल्परूप है।

३२—जीवका मलीमस ज्ञानविकल्प कर्मविपाकका प्रतिफलन होनेपर होता है।

३३—कर्मविपाक पुद्गलकर्मकी दशा है, कर्मविपाकप्रतिफलन उपयोगकी स्वच्छताका विकार है।

३४- उपयोगकी स्वच्छताका विकार जब बुद्धिपूर्वक उपयोगमें होता है अर्थात् कर्मविपाक (रागादि) को जब जीव-उपयोगभूमिमें ला देता है तब कर्मका विकट बंधन होता है।

३५- कर्ममें कर्मविपाक होना और उसी समय ज्ञानमें प्रतिफलन (स्वच्छताका विकार) होना यह अनिवार्य निमित्त-नैमित्तिक योग है।

३६- जब कर्मविपाक हो तब उसी समय ज्ञानमें प्रतिफलन होता इस अनिवारित योगमें अज्ञानी जीव उस विकारको

अपना कर संसारबन्धन बनाता है।

३७– जब कर्मविपाक हो तब उसी समय ज्ञानमें प्रतिफलन होता इस अनिवारित योगमें भी उस विकारको ज्ञानी जीव अन्तस्तत्त्व परिचयके कारण अपनाता नहीं है, इस कारण ज्ञानीके संसारबन्धन नहीं होता।

३८– ज्ञानीके दर्शनमोह न होनेपर भी चारित्रमोहनीयका विशिष्ट उदय हो तो उसके ज्ञानविकल्प तो बनता है, किन्तु वह मात्र क्षोभरूप होता है, मोहरूप नहीं होता।

३९—विकारकी स्वीकारताके भावको मोह कहते हैं और विकारोपयोगसे हुए सुख दुःखयोजक भावको क्षोभ कहते हैं।

४०– कर्मविपाकप्रतिफलन होनेपर भी जब जघन्य या मध्यम अन्तरात्मा निज सहज ज्ञानस्वभावमें उपयोगी होता है अर्थात् स्वानुभवी होता है उस समय बुद्धिपूर्वक विकार न होने से वह निर्बन्ध बताया गया है वहां जो भी अल्प बन्ध होता है वह यथाख्यात चारित्रसे पहले अवश्यंभावी रागसद्भावके कारण होता है।

४१—जब चारित्रमोहनीयका लेशमात्र भी उदय असंभव हो जाता है तब अवशिष्ट कर्मविपाक उपयोगकी स्वच्छताके विकाररूपसे प्रतिफलित नहीं होता, किन्तु वह अवशिष्ट कर्मविपाक मात्र देहादिप्रभावका निमित्तभूत रहता है।

४२– "प्रारंभके तेरह गुणस्थानरूप द्रव्यप्रत्यय नवीन

कर्मके आश्रवके निमित्तभूत हैं" इसका अर्थ यह है कि उन गुणस्थानोंमें आत्माकी यथावस्थिततामें जो कमी है उसका निमित्त कारण उस प्रकारका उदयागत द्रव्यप्रत्यय है। वह द्रव्यप्रत्यय आश्रवका (कहीं साम्परायिक आश्रवका कहीं ईर्यापथ आश्रवका) निमित्तभूत है।

४३- दर्शनमोहका उदय असंभव हो जानेपर शुद्धस्वरूप की दृष्टि हो जाती है और फिर चारित्रमोहके हटावसे शुद्धस्वरूपदृष्टिकी स्थिरतामें बढ़ बढ़कर सिद्धअवस्थामें त्रिविध कर्ममलवर्जित सर्वथा शुद्धस्वरूप प्रकट हो जाता है।

४४—शुद्ध स्वरूपद्रष्टामें शुद्धोपयोगका अंश आया है और यहींसे वह बढ़-बढ़कर अरहंत भगवंतकी स्थितिरूप शुद्धोपयोग हो जाता है।

४५—जितना-जितना जहाँ-जहाँ शुद्धोपयोगका अंश प्रकट हुआ है उतना-उतना वहाँ-वहाँ स्वरूपाचरण चल रहा है।

४६—सम्यक्त्वाचरण स्वरूपप्रतीतिरूप स्वरूपाचरण है।

४७—अणुव्रत महाव्रत स्वरूपमार्गचालकरूप स्वरूपाचरण है।

४८- अप्रमत्तदशा स्वरूपरमणरूप स्वरूपाचरण है।

४९—वीतरागदशा स्वरूपमग्नतारूप स्वरूपाचरण है।

५०—जिसका जहाँ जब जिस विधानसे जो परिणमन सम्पन्न हुआ है, वह निर्मल ज्ञानियोंके ज्ञानमें विषयभूत होता

है ।

५१—जिसका जहां जब जिस विधानसे जो परिणमन सम्पन्न हुआ है वह निर्मल ज्ञानियोंके ज्ञानमें विषयभूत होता है ।

५२—जिसका जहां जब जिस विधानसे जो परिणमन संपन्न होगा वह निर्मल ज्ञानियोंके ज्ञानमें विषयभूत होता है ।

५३—जो हुआ, जो होता है, जो होगा वह निर्मलज्ञानियोंके ज्ञानका विषयभूत होता है सो उस ज्ञानकी ओरसे यह फलित होता है कि जो-जो देखी वीतरागने सो-सो होसी वीरा रे, अनहोनी नहिं होसी कबहूं काहे होत अधीरा रे ।

५४—विषम परिणमनका विधिविधान निमित्तनैमित्तिक योग पूर्वक होना व जो सर्वज्ञ अथवा विशिष्ट ज्ञानियों द्वारा ज्ञात है वही होना, इन दोनों तथ्योंमें परस्पर विरोध नहीं है ।

५५—केवल निश्चयदृष्टिसे वस्तुपरिणमन निरखनेपर विदित होता है कि द्रव्यमें मात्र अपनी योग्यतासे शुद्ध अशुद्ध सभी प्रकारके परिणमन होते चले जाते हैं, क्योंकि निश्चयनय उपाधि निमित्त, घटना आदि कुछ भी नहीं देख पाता ।

५६—व्यवहारनयसे देखनेपर विदित होता है कि कर्मविपाकके सान्निध्यमें यह जीव चारों गतियोंमें रुलता है, नाना विकारोंसे ग्रस्त होता है ।

५७—प्रमाणदृष्टिसे निरखनेपर विदित होता कि कर्मवि-

पाकके निमित्तसान्निध्यमें यह अशुद्ध उपादान वाला जीव अपनी योग्यतासे तदनुरूप ज्ञानविकल्प किया करता है और नोकर्मवर्गणायें देहरूप परिणमन किया करती हैं।

५८—केवल निश्चयदृष्टिसे कर्मपरिणमन देखनेपर विदित होता है कि कार्माणवर्गणाओंमें मात्र अपनी योग्यतासे कर्मत्व, अकर्मत्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, संवरण निर्जरण आदि परिणमन होते चले जाते हैं, क्योंकि निश्चयनय उपाधि, निमित्त घटना आदि कुछ भी नहीं देख पाता।

५९—व्यवहारनयसे देखनेपर विदित होता है कि जीवके विकारभाव व निर्विकार भावके सान्निध्यसे कार्माण वर्गणाओं में, कर्मत्व, अकर्मत्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, संवरण, निर्जरण आदि दशायें होती हैं।

६०— प्रमाणदृष्टिसे देखनेपर विदित होता है कि अनुकूल जीवभावके सान्निध्यका निमित्त पाकर योग्य उपादान वाली कार्माणवर्गणायें अपनी योग्यतासे तदनुरूप कर्मत्व, अकर्मत्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, संवरण, निर्जरण आदिरूप परिणमन किया करती हैं।

६१— कर्मकी उदयरूप दशामें जीवभाव निमित्त नहीं, उस कर्मका तो जब बन्ध हुआ था तब जीवविभाव निमित्त था, शेष कर्मदशाओंके होनेमें जीवभाव निमित्त है।

६२— द्रव्यत्व व परिणमन पदार्थका अनिवारित रूप है

एवं द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिकनय प्रमाणके अंश है, अतः द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिकनय इन विभिन्न दृष्टियोंके आधार पर स्याद्वाद बनता है।

६३– वस्तुभूतवृत्ति व घटना सर्वत्र अनिवारित है एवं निश्चयनय व व्यवहारनय प्रमाणके अंश हैं, अतः निश्चयनय व व्यवहारनय इन विभिन्न दृष्टियोंके आधारपर वस्तुका निर्णय होता है।

६४– निश्चयनय, व्यवहारनय व उपचार इन तीनमें निश्चयनय व व्यवहारनय तो प्रमाणांश हैं व सापेक्ष होकर तथ्यके प्रतिपादक है।

६५– उपचारभाषामें परकर्तृत्व, परस्वामित्व व परैकत्वका वचन रहता है सो इसी रूपसे समझ लेना मिथ्या है। यहाँ तो उपचारका प्रयोजन जानकर उपचारभाषाकी उपेक्षा करना ही विवेक है।

६६—अखण्ड ध्रुव निज स्वभावके आश्रयसे ही गुणविकासरूप निर्मलपर्याय प्रकट होती है, क्योंकि अविकार स्वभावका आश्रय होनेपर ही विकारका परिहार होता है।

६७– अविकारस्वभावका उपयोग न रहनेकी स्थितिमें शुभोपयोगप्रवर्तन कर्तव्य है जिससे कि व्यसन पाप कषाय आदि अशुभोपयोगप्रवर्तनसे अविकारस्वभावका उपयोग हो सकनेकी पात्रता नष्ट न हो जावे।

६८—जिस शुभोपयोगमें शुद्धतत्त्वकी दिशा रहती है वह शुभोपयोग उपकारी तत्त्व है।

६९– ज्ञानीका एक ही समयमें कषायांशोंके सद्भाव व अभावमें उद्भूत एक ही परिणाम विभिन्न विशेषताओंके कारण एक ही समयमें आस्रव, बंध, संवर व निर्जराका हेतुभूत होता है।

७०– "जीव कर्मसे बद्ध है" यह व्यवहारनयका पक्ष (विकल्प) है और "जीव कर्मसे बद्ध है ऐसा नहीं" यह निश्चयनयका पक्ष (विकल्प) है, किन्तु जो इन दोनों विकल्पोंसे परे होकर स्वरूपमें गुप्त होते हैं वे ही सहज परमात्मतत्त्वामृतका पान करते हैं।

७१—"जीव विकृत है" यह तो व्यवहारनयका पक्ष (विकल्प) है और "जीव विकृत है ऐसा नहीं" यह निश्चयनयका पक्ष (विकल्प) है, किन्तु जो इन दोनों विकल्पोंसे परे होकर स्वरूपमें गुप्त होते हैं वे ही सहजपरमात्मतत्त्वामृतका पान करते हैं।

७२—"जीव सूक्ष्म है" यह व्यवहारनयका पक्ष है और "जीव सूक्ष्म है ऐसा नहीं" यह निश्चयनयका पक्ष है, किन्तु जो इन दोनों पक्षोंसे परे होकर स्वरूपमें गुप्त होते हैं वे ही सहजपरमात्म-तत्त्वामृतका पान करते हैं।

७३—निज आत्माको स्वभावदृष्टिसे देखनेपर शिवस्वरूप

विदित होता है, परिणतिदृष्टिसे देखनेपर यहाँ कल्मष विदित होता है। दोनों ही अभी यहाँ तथ्य हैं, अतः कल्मषपरिणति का अभाव न बताकर, किन्तु उसे गौण कर शिवस्वरूपको मुख्यतया निरखनेसे कल्याणमार्ग प्राप्त होता है।

७४– ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका सामान्यस्वरूप ज्ञायकस्वभाव है, विशेष स्वरूप विविध ज्ञेयाकार विज्ञानतरङ्ग है। उपयोगमें विशेषका तिरोभाव और सामान्यका आविर्भाव होने पर सहजशुद्ध ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वका अनुभव होता है।

७५—जिस व्यवहारको मिथ्या कहा है वह उपचारवाला ही व्यवहार है। क्योंकि परस्वामित्व परकर्तृत्व व परैकत्व की भाषा उपचारमें ही होती है, व्यवहारनयमें नहीं। व्यवहार नय तो प्रतिपक्षसापेक्ष होकर प्रमाणका अंश है जैसे कि निश्चयनय प्रतिपक्षसापेक्ष होकर प्रमाणका अंश है।

७६– स्वयं सहज निरपेक्ष असंपृक्त शाश्वत भूत (सद्रूप) अर्थको भूतार्थ कहते हैं और भूतार्थको विषय करने वाले नय को अभूतार्थनय कहते हैं।

७७– जो स्वय सहज निरपेक्ष असंपृक्त शाश्वत नहीं ऐसे अर्थको (परिणामको) अभूतार्थ कहते हैं और अभूतार्थको विषय करने वाले नयको भूतार्थनय कहते हैं।

७८– अभूतार्थ स्वयं सहज निरपेक्ष असंपृक्त शाश्वत अर्थ नहीं होता, किन्तु औपाधिक, भेदक, सापेक्ष, नैमित्तिक, क्षायिक

व प्रयोजक परिणाम होता है।

७९– व्यवहारनय, निश्चयनय व शुद्धनय इन सभी उपायोंसे ज्ञात बात सत्य है, किन्तु व्यवहारनयसे प्रयोजन निकाल कर उसे छोड़कर, निश्चयनयसे प्रयोजन निकाल कर उसे छोड़कर, शुद्धनयसे प्रयोज्य निरखकर इसमें ही गुप्त हो जानेमें कल्याण है।

८०– भेदविज्ञान द्वारा आत्मतत्त्वको परपदार्थ, परभाव व तरंगोंसे विविक्त जानकर इस विविक्त अभेदस्वरूपको अभेद ज्ञान द्वारा अनुभवनेमें शान्तिका लाभ एवं कल्याण है।

८१– उदित कर्मानुभाग मेरे भोगे बिना ही झड़ जावो, मैं तो सहज चैतन्यभावको ही चेतता हूं, ऐसे उपयोगप्रयोगसे निकटकालमें चैतन्यसंचेतन ही निरन्तर होता रहेगा।

८२– विकारसे विविक्त चैतन्य महाप्रभुके दर्शन होनेपर स्पष्ट जच जाता कि अब तक जो मन वचन कायकी चेष्टायें हुईं वे सब मिथ्या थीं, मायामय थीं, अनर्थकारणी थीं। और साथ ही उन चेष्टावोंको न करनेका आग्रह बन जाता है।

८३– जब इस जीवने प्रज्ञाके दोषसे ही रागद्वेषादिक विभावोंमें लगकर अपना अनर्थ किया तब यह जीव प्रज्ञाके गुण से ही रागद्वेषादिक विभावोंसे हटकर सहजस्वभावमें लगकर अपना कल्याण कर सकता है, कल्याणकी विधि इससे भिन्न अन्य नहीं है।

८४– ज्ञानीने परभावसे विविक्त केवल ज्ञानमय अन्तस्तत्त्वकी अनुभूति करके उसमें आत्मप्रतीति की है और वह आत्मप्रतीति निरन्तर रहती है, इस कारण अब जो भी ज्ञानी के भाव होते हैं वे सब ज्ञानमय भाव हैं।

८५– अज्ञानी अज्ञानमय परभावमें ही आत्मानुभूति करता रहता है, इस कारण अज्ञानीके जो भी भाव होते हैं वे सब अज्ञानरूप भाव हैं।

८६– निमित्तनैमित्तिक भाव भिन्न-भिन्न द्रव्योंकी स्थिति में होता है इस कारण जहाँ निमित्तनैमित्तिक भाव है, वहाँ परस्पर कर्तृकर्मत्वभाव असंभव है।

८७—कर्तृकर्मत्वभाव एक ही द्रव्यमें उपादान उपादेय रूपमें होता है, इस कारण जहाँ कर्तृकर्मत्व है वहाँ निमित्तनैमित्तिक भावका अवकाश नहीं।

८८—जीवविकारमें कर्मविपाकोदय ही निमित्त कारण है, पंच इन्द्रिय व मनके विषयभूत पदार्थ नहीं। ये बाह्य पदार्थ तो मात्र बुद्धिपूर्वक (व्यक्त) विकारमें आश्रयभूत (आरोपित) कारण हैं।

८९– जिस पदार्थपरिणमनका अन्य पदार्थके परिणामके साथ अन्वयव्यतिरेक संबन्ध हो उसे निमित्तकारण कहते हैं निमित्तकारणका उपादानमें अत्यन्ताभाव है। किसी पदार्थका अन्य पदार्थमें अत्यन्ताभाव होता ही है।

९०—कर्मविपाकोदयके सान्निध्यमें जीवविकार होते समय जिस बाह्य पदार्थके प्रति उपयोग जुटे, वह बाह्य पदार्थ आश्रय-भूत कारण है। बाह्य पदार्थमें उपयोग जुटनेपर ही उसे कारण कहा जाता है इस कारण आश्रयभूत कारण आरोपित कारण कहलाता है।

९१—जो वस्तुको भेदपद्धतिसे बतावे वह व्यवहारनय है।

९२—जो वस्तुको अभेदपद्धतिसे बतावे वह निश्चयनय है।

९३— जो अनादि अनंत अहेतुक अखण्ड स्वभावमय अवक्तव्य वस्तुको दर्शावे वह शुद्धनय है।

९४— जो परकर्तृत्व, परस्वामित्व व परैकत्वकी भाषा है वह उपचार है।

९५— व्यवहारनयका वर्णन एक नयपक्ष है, निश्चयनयका निरूपण भी एक नयपक्ष है। जो दोनों नयपक्षोंका अतिक्रमण कर शुद्धनयके लक्ष्यभूतके आश्रयके बलसे निर्विकल्प सहज अन्तस्तत्त्वमें उपयुक्त होता है वह सहजपरमात्मतत्त्वमय समय-सारामृतका पान करता है।

९६— उपचार वाला व्यवहार असत्य है, उसका उपयोग तो प्रयोजनमात्र बतानेके लिये है।

९७— व्यवहारनय सत्य है वह परमार्थनिरूपक है, किन्तु भेदबहुल होनेसे आश्रयणीय नहीं।

९८— निश्चयनय सत्य है वह शुद्धनयादेशक है, किन्तु

विकल्परूप होनेसे आश्रयणीय नहीं।

९९- शुद्धनय, एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्व ही निर्विकल्प आश्रयणीय है।

१००—कर्मविपाकप्रतिफलनकालमें जीव यदि इन्द्रिय व मनके विषयोंका आश्रय करता है तब तो बुद्धिपूर्वक विकार होता है और यदि आश्रय नहीं करता है तब अबुद्धिपूर्वक विकार होता है।

१०१- बुद्धिपूर्वक विकार हो तब भी ज्ञानीके बुद्धिपूर्वक विकारभावनाका अभिप्राय न होनेसे संसारबन्धक कर्मबन्ध नहीं होता, किन्तु उपभोगनिमित्तक कर्मबन्ध होता।

॥ समाप्त ॥

* आत्म रमण *

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥ टेक ॥
हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।
हूं सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥१॥
हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥२॥
आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा० मैं दर्शन० ॥३॥

मुद्रक—मैनेजर, शास्त्रमाला प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

मंगल विज्ञप्ति

महाराजश्री ने आध्यात्मिक सैद्धान्तिक करीब २५० ग्रंथोंकी रचना की है तथा आध्यात्मिक सैद्धान्तिक दार्शनिक प्रसिद्ध करीब ६० ग्रन्थराजोंपर प्रवचन किये हैं जो अनेक भागोंमें हैं ऐसे ग्रंथ भी करीब २५० हैं। इन ग्रन्थोंमें करीब दो तिहाई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, एक तिहाई ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। इन सब ग्रन्थोंमें बड़े-बड़े गहन तत्त्व ऐसी शैलीसे व लघु दृष्टान्त देकर समझाये हैं कि जिज्ञासु जन इन तत्त्वों को सुगमतया समझकर सत्य शान्तिका लाभ ले सकते हैं।

—०—

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्तीमें क्षण जाँय सारे ॥टेक॥

ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो।
भ्रांतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥१॥

सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥२॥

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥३॥

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥५॥

प्रकाशकीय

प्रिय पाठकवृन्द ! आपके करकमलोंमें जो रचना आ रही है वह अध्यात्मविषयकी कुञ्जी रूप ग्रंथ है। अध्यात्मयोगी गुरुवर्य्य पूज्यश्री मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराजने इस रचना द्वारा जिज्ञासुओंको मार्गदर्शन दिया है व सकल भ्रमोंका निराकरण भी किया है। इसमें १०१ नियम हैं जिनके आधार पर आगम वाक्योंका, आर्ष उपदेशोंका सही-सही अर्थ लगाया जाता है तथा किन्हीं स्थलोंमें अर्थ लगानेकी द्विविधा होनेपर इन नियमोंके आधारपर शंकाओंका निवारण किया जाता है।

महाराजश्रीकी दयासे जैनशासनके गहन तथ्योंका भी सुगमतया परिचय प्राप्त हो रहा है यह समाजका परम सौभाग्य है और मेरे लिए बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसे रत्नोंके प्रकाशनमें मुझे सेवा करनेका अवसर मिला है।

सहजानन्द-साहित्य-उद्घोष

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अतः स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोंको गौण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।